International Journal of Sanskrit Research 2016; 2(1): 27-31

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2016; 2(1): 27-31
© 2016 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 22-11-2015
Accepted: 24-12-2015

**डॉ. राजकुमार**
शोध–छात्र(डी0लिट0) संस्कृतविभाग,
बी0एस0ए0कॉलेज,मथुरा

**Correspondence**
**डॉ. राजकुमार**
शोध–छात्र(डी0लिट0) संस्कृतविभाग,
बी0एस0ए0कॉलेज,मथुरा

# श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञान का स्वरुप

## डॉ. राजकुमार

ज्ञान शब्द की निष्पत्ति ज्ञ धातु में ल्युट् प्रत्यय के योग से होती है जिसका अर्थ है जानना । संसार में सृष्टि प्रक्रिया प्रकृति और पुरुष के संयोग से ही होती है अतः इन्हें यथार्थ रुप से जानना ही ज्ञान है – 'क्षेत्र क्षेत्रज्ञयोज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम'।[1] महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के अनुसार वास्तविक सत्य को जानना ही ज्ञान है –'यथार्थ दर्शनं ज्ञानमिति'।[2] जगत्गुरु शंकराचार्य के अनुसार सोऽयं नित्यानित्यवस्तुविवेकः समुदाहृतः[3] अर्थात् सृष्टि में क्या नित्य है और क्या अनित्य है क्या सत्य है और क्या मिथ्या है इनका भेद करना ही ज्ञान है। 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्येत्येवंरुपो विनिश्चयः'[4] अर्थात् सृष्टि में ब्रह्म ही सत्य है और जगत् मिथ्या है । सोपायं परमार्थतत्वं लौकिकं शुद्धलोकिकं लोकोत्तरं च क्रमेण येन ज्ञानेन ज्ञायते तज्ज्ञानम्[5] अर्थात् उपाय के सहित परमार्थतत्व ( ब्रह्म ) तथा लौकिक शुद्ध लौकिक और लोकोत्तर अवस्थाओं का जिस ज्ञान के द्वारा क्रमशः बोध होता है उसे 'ज्ञान' कहते है। वस्तु और उपलब्धि दोंनो के सहित लो द्वैत है उसे उसे लौकिक जाग्रत कहतें है जो द्वैत वस्तु के बिना केवल उपलब्धि के सहित है उसे शुद्ध लौकिक ( स्वप्न ) कहतें है। तथा वस्तु और उपलब्धि दौनों से रहित है वह अवस्था लोकोत्तर कहलाती है ।[6] ज्ञान के अन्तर्गत तीन तथ्य आते हैं – ज्ञान ज्ञेय और ज्ञाता । जो जाना जाता है उसे ज्ञान कहते हैं । जिसे जाना जाता है उसे ज्ञेय कहते हैं। और जो जान लेता है वह ज्ञाता कहलाता है । सांसारिक और आध्यात्मिक रुप से ज्ञान दो प्रकार का होता है ।सांसारिक ज्ञान से संसार के कर्म होते हैं जिनसे भोंगों की प्राप्ति होती है । उपनिषदों में इसे अपरा विद्या तथा प्रेय आादि कहा गया है । आध्यात्मिक ज्ञान मुक्ति का हेतु है जिसे उपनिषदों में विद्या, पराविद्या, तत्वज्ञान, आत्मज्ञान तथा श्रेय आदि कहा गया है ।[7] ईशावास्योपनिषद् में ज्ञान को विद्या तथा अविद्या के नाम से अभिहित किया गया है –

> विद्या चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयंसह
> अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ।[8]

अर्थात् जो विद्या और अविद्या दोनों को ही एक साथ जानता है वह अविद्या से मृत्यु को पार करके विद्या से अमरत्व (मुक्ति) प्राप्त कर लेता है ।
ज्ञानान्मुक्तिः[9] अर्थात् केवल ज्ञान से ही मुक्ति प्राप्त होती है इसे प्राप्त करके जीवात्मा चौरासी लाख यौनियों के भवबन्धनों से छुटकारा प्राप्त कर लेता है । ज्ञान ही कर्मो का कारण है बिना ज्ञान के कोई कर्म नहीं हो सकता। जिसका जैसा ज्ञान होगा वैसे ही उसके कर्म होंगे। उच्च ज्ञान से ही उच्च कर्म होते हैं। कर्म तो ज्ञान का ही अनुसरण करते हैं ।ये छाया की भांति उसके आगे–पीछे चलते हैं। शरीर में जो किया होती है वह ईश्वर की प्राण शक्ति से होती है किन्तु कर्म तो ज्ञान से होते हैं। एक नवजात शिशु हाथ पांव चलाता है यह किया उसकी प्राण शक्ति के स्पन्दन से होती है। किन्तु ज्ञान के अभाव मे वह कर्म नही कर सकता अतः ज्ञान ही कर्मों का आधार है। यह ज्ञान शक्ति उस परमेश्वर की शक्ति है जो चेतन है। 'ज्ञानाधिकरणमात्मा' [10] अर्थात् यह ईश्वर का अंश आत्मा ज्ञान स्वरुप है। यह प्रकाशवान है परन्तु भौतिक प्रकाश से भिन्न है।

> न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतोभान्ति कुतोअयमग्निः
> तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।

अर्थात् आत्म प्रकाश के समक्ष सूर्य चन्द्र तारा और विद्युत का प्रकाश नगण्य है । उसके प्रकाश से ही भौतिक सूर्यादि को प्रकाश प्राप्त होता है । महर्षि अष्टावक्र जी के अनुसार अपने वास्तविक स्वरुप (आत्मा) को जानना ही ज्ञान है । अर्थात् उनकी दृष्टि में केवल आत्मज्ञान को ही ज्ञान माना गया है । श्रीमद्भगवद्गीता ज्ञान के सन्दर्भ में कहती है –

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते '[12] अर्थात् संसार में इसके समान संसार में पवित्र करने वाला कुछ भी नहीं है । यथा–

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेर्जुन
ज्ञानाग्निः सर्वकमार्णि भस्मसात्कुरुते तथा ।।[13]

अर्थात् जैसे अच्छी प्रकार से प्रज्वलित अग्नि समस्त प्रकार के गीले सूखे ईंधन को भस्ममय कर देता है उसी प्रकार यह ज्ञान जीवात्मा के समस्त प्रकार के कर्मो को निर्बीज का देता है यानी ज्ञानोदय के पश्चात् प्राणी के अन्दर वे कर्म अपना अच्छा या बुरा फल नहीं देते हैं। इस ज्ञान को व्यक्ति अपनी आस्था श्रद्धा विश्वास से अपनी पुरुषार्थ के बल पर प्राप्त कर लेता है तथा अज्ञान के कारण अनादिकाल से जरा–मरण आदि दुःखो की चली आ रही परम्परा ज्ञानोदय के पश्चात् नित्य – निरन्तर के लिए समाप्त हो जाती है और वह व्यक्ति मुक्ति प्राप्त कर लेता है।[14] यह ज्ञान काम के द्वारा ढका हुआ है –

धूमेनाब्रियते वहिनर्यथादर्शो मलेन च ।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ।।[15]

अर्थात् जिस प्रकार धुंए से अग्नि और मैल से दर्पण तथा जेर से गर्भ ढका रहता है उसी प्रकार काम से ज्ञान ढका हुआ है। अतः ज्ञान प्राप्ति से पूर्व समस्त व्यक्तियों को काम पर विजय प्राप्त करनी चाहिये । भगवान श्री कृष्ण ने भी काम को बल पूर्वक मार डालने की सलाह दी है क्योंकि यह इन्द्रियां मन और बुद्धि के द्वारा ज्ञान को आच्छादित करके जीवात्मा को मोहित करता है ।[16] ज्ञान प्राप्ति हेतु प्राचीन काल से ही हमारे ऋषि मुनियों ने काम के प्रभाव से बचने के लिए आश्रम व्यवस्था की स्थापना की थी और ब्रह्मचर्य आश्रम को ज्ञान प्राप्ति हेतु आवश्यक बताया । इस आश्रम में ब्रह्मचारी काम पर पूर्ण रुप से विजय प्राप्त कर लेता है और तभी वह ज्ञान प्राप्त कर लेता है । इसी आश्रम में ज्ञान प्राप्त करके भगवान श्री राम, श्री कृष्ण आदि ने ज्ञान के क्षेत्र में सर्वोत्कृष्ट ख्याति अर्जित की । भगवान श्री राम ने अपने गुरु वशिष्ठ जी से ज्ञान के विषय में पूछा तब उनके गुरु (वशिष्ठ जी) ने उन्हें ज्ञान की सात भूमिकाओं का उपदेश दिया –

ज्ञानभूमिः शुभेच्छाख्याप्रथमासमुदात्दृता विचारणाद्वितीयातु तृतीयातनुमानसा सत्वा पत्तिश्चतुर्थीस्यात्ततोसंसक्तिनामिका पदार्था भावनीषष्ठी सप्तमीतुर्यगास्मृता :[17] अर्थात् ज्ञान की प्रथम भूमिका शुभेच्छा है, विचारणा दूसरी, तीसरी तनुमानसा, चौथी सत्वापत्ति, पांचवी आसंसक्ति, छठवीं पदार्था भावनी और सातवी तुर्ययगा । स्थितः किं मूढएवास्मिप्रेक्ष्येहशास्त्रसज्जनेः वैराग्यपूर्वमिच्छेतिशुभेच्छेत्युच्यतेबुधैः । शास्त्रसज्जनसंपर्कवैराग्याभ्यासपूर्वकम् सदाचारप्रवृत्तिर्या प्रोच्यतेतसातिचारण । विचारणा शुभेच्छाभ्यामिंदियार्थेष्वसक्तता यात्रसातनुता भावात् प्रोच्यतेतनुमानसा ।भूमिकात्रितयाभ्यासच्चितेथेविरतेर्वशात् सत्यात्मनिस्थितिः शुद्धेसेत्त्वात्तिरुदाहृता । दशाचतुष्टयाभ्या सादसंसगफलेनच रुढसत्वचमत्कारात प्रोक्तासंसक्तिनामिका । भूमिकापंचकाभ्यासात्स्वात्मारामतयादृढम् आभ्यंतराणांवात्द्यानांपदार्थानामभावनात् । परप्रत्युक्तेनचिरंप्रत्यनार्थभावनात् पदार्थाभावनानाम्नीषष्ठी संजायते गतिः । भूमिषट्कचिराभ्यासाभ्देदस्यानुपलंभतः यत्स्वस्वभावैक निष्ठत्वंसाझेंयातुर्यगागतिः ।[18]

अर्थात् मैं क्यों बैठा हूं शास्त्र अर्थात् विचारित वेदान्त वाक्यों के साथ तथा गुरुओं के साथ मेरा समागम हो ऐसी जो वैराग्य पूर्वक इच्छा है वह शुभेच्छा है, शास्त्र और सज्जनों के सम्पर्क से बैराग्य और अभ्यासपूर्वक जो सदाचार प्रवृत्ति है उसे विचारणा कहते हैं । विचारणा और शुभेच्छा से जो इन्द्रिय के विषय शब्द स्पर्शादि में आसक्तता है वह निदिध्यासन के कारण तनुमानसा कही जाती है । तीनों पूर्वोक्त भूमिकाओं के अभ्यास से वाह्यार्थ से चित्त में चित्त की वृत्ति की विरामता के स्थैर्य के वश से माया और उसके कार्यरुप अवस्थाशास्त्रय से शोधित शुद्ध चेतन मात्र में जो स्थिति है उसको सत्वापत्ति कहते हैं यह मन सत्व परमात्म रुप में आपन्न है इसलिए सत्वापत्ति अन्वर्थ संज्ञा है इस भूमिका मे स्थित प्राणी ब्रह्मवित कहा जाता है । और अवस्थाओं के अभ्यास से बाह्याभ्यन्तर विषय और उनके संस्कारों के स्पर्श से शून्य असंग रुप समाधि की परिपाक्ता लक्षण फल के द्वारा वृद्धि को प्राप्त निरति शयानन्द रुप बृह्मात्मभाव साक्षात्कार से जो दशा होती है वह आसंसक्ति कहलाती है कयोंकि उसमें अविद्या और उसके कार्यो की आसंसक्ति नही होती । पांचों भूमिकाओं के अभ्यास से दृढस्वात्मारामता से बाह्य तथा आभ्यन्तर पदार्थों की अभावना से तथा देह यात्रा मात्र की सिद्धि के लिए अन्यकृत चिरकाल के प्रयत्न से पदार्थों की भावना से जो अवस्था होती है वही छठी पदार्था भावना कहलाती है क्योंकि रामादि से पदार्थो की भावना नही होती है । इस भूमिका में चिरकाल तक के अभ्यास से और भेद की अप्राप्ति से जो केवल स्वभाव मात्र में स्थित है उसकी सातवीं तुर्यावस्था कहलाती है ।

आचार्य शंकर के अनुसार ज्ञान ही मुक्ति का सर्वोत्कृष्ट साधन है बिना ज्ञान के सौ जन्म धारण करने पर भी मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती ।[19] सम्पूर्ण कर्म ज्ञान में समाप्त हो जाते है अर्थात् ज्ञान ही उनकी पराकाष्ठा है ।[20] ज्ञान का आदि श्रोत भगवान शिव है क्योंकि संस्कृत साहित्य में ज्ञानामिच्छेत महेश्वरात् आरोग्यं भास्करात् उक्ति प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध है । भगवान शिव के ज्ञान का आदि स्त्रोत होने की पुष्ठि शिवपुराण से होती है सृष्टि रचना के समय भगवान शिव ने भगवान नारायण व ब्रह्मा जी को उपदेश दिया था– अहंमेव परंब्रह्मत्स्वरुपंकलाकलम् ब्रह्मत्वादी श्वरश्चाहंकृत्यंमेनुहादिकम् । वृहत्वाद्बृंहणत्वाच्च ब्रह्माहंब्रह्मकेशवौ । समत्वाद्व्यापकत्वाच्चतथैवात्माहमर्भको । अनात्मानः परेसर्वे जीवाएवनसंशयः अनुगृहाद्यंसर्गातंजगत्कृत्यंचपंकजम् । ईशत्वादेवमेनित्यंनमद न्यकस्यचित आदौब्रह्मत्वबुद्धय र्थेनिष्कललिंगमुत्थितम् ।[21] अर्थात् मैं ही परब्रह्म हूं और मेरा ही कल अकल रुप है ब्रह्म होने से मै ईश्वर हूं अनुग्रह आदिक ही मेरा कृत्य है । सर्वव्यापी होने से और जगत् के बर्द्धक होने से मै ब्रह्मा हूं हे ब्रह्मकेशव । समत्व और व्यापक होने से मैं आत्मा हूं और सम्पूर्ण जीव आत्मा नही इसमें सन्देह नहीं अनुग्रह से ही यह सर्ग के अन्त तक जो जगत्का कृत्य और पंचक है मैं इस सबका ईश्वर हूं यह मेरा है मेरे सिवाय किसी दूसरे का नहीं प्रथम तो ब्रह्म ज्ञान के निमित्त निष्कल ब्रह्म का प्रादुर्भाव हुआ है । इस ज्ञान को भगवान नारायण ने सूर्य से कहा इसका प्रमाण श्रीमद्भगवद्गीता के चौथे अध्याय के प्रथम श्लोक में मिलता है –

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेअब्रवीत ।
एवं परम्पराप्राप्तमिमंराजर्षयो विदुः ।[22]

अर्थात् मैंने भगवान नारायण रुप मे इस अविनाशी योग (ज्ञान योग) को सूर्य से कहा था सूर्य ने अपने पुत्र वैवस्त मनु से कहा और मनु ने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु से कहा । इस प्रकार परम्परा से प्राप्त इस योग (ज्ञान योग) को राजर्षियो ने जाना । भगवान शिव से अर्जित ज्ञान को ब्रह्मा जी ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा से कहा अथर्वा ने यह विद्या अंगी को सिखाई अंगी ने उसे भारद्वाज के पुत्र सत्यवह से कहा और सत्यवह ने उसे अंगिरा से कहा । अंगिरा ने उस विद्या को शौनक से इस प्रकार कहा – द्वे विद्ये वेदिव्ये इति इस्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवा परा च । तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो अथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दों ज्योतिषमिति । अथपरायया तदक्षरमधिगम्यतं ।[23] अर्थात् ब्रह्मवेत्ताओं ने कहा है कि संसार में दो ही विद्या जानने योग्य हैं – एक परा और द्वितीय अपरा । उनमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प व्याकरण, निरुक्त छन्द और ज्योतिष यह अपरा है तथा जिससे उस अक्षर ब्रह्म परमात्मा का ज्ञान होता है वह परा है ।

इसी परा और अपरा विद्या को कठोपनिषद् मे श्रेय और प्रेय के नाम से वर्णित किया गया है । –

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेत स्तौ सम्परीत्य विवनक्ति धीरः ।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रयसो वृणीते प्रेयोमन्दो योगक्षेमाद् वृणीते।

अर्थात् श्रेय (विद्या) और प्रेय (अविद्या) दौनों परस्पर मिलकर मनुष्य के समक्ष आते है । उन दौनों को बुद्धिमान पुरुष भली प्रकार से विचारकर अलग अलग करता है विवेकी पुरुष प्रेय की अपेक्षा श्रेय को ही ग्रहण करता है किन्तु मूद योग क्षेम के निमित्त से प्रेय को ही चुनता है ।

तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेअर्थाद्य उप्रयो वृणीते ।[25]

श्रेय को ग्रहण करने वाले का शुभ मुक्ति को प्राप्त होता है और प्रेय अविद्या को ग्रहण करने वालो पुरुषार्थ से पतित हो जाता है ।

अविद्यामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीरा : पण्डितम्मन्यमाना : ।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ।[26]

अर्थात् अविद्या के भीतर रहने वाले अपने आप बुद्धिमान बने हुए और अपने को पण्डित मानने वाले मूढ पुरुष अन्धे ही ले जाये लाए जाते हुए अन्धे के समान अनेको कुटिल गतियो की कामना करते हुए भटकते रहते हैं ।आध्यात्मिक ज्ञान (विद्या) को माण्डूक्योपनिषद् में ब्रह्म से अभिन्न अजन्मा और नित्य बताया गया है–

अकल्पकमजं ज्ञानं ज्ञेयाभिन्न प्रचक्षते ।
ब्रह्मज्ञेयमजं नित्यमजेनाजं विबुध्यते ।।

ज्ञान के स्वरुप से सम्बन्धित कुछ प्रमुख तत्व इस प्रकार हैं– 1. ज्ञान स्वयं प्रकाश है 2.ज्ञान स्वतः प्रमाण है परतः नही 3. ज्ञानकाल परिच्छिन्न नहीं है 4. ज्ञान मे देश परिच्छेद नहीं है 5. ज्ञान विषय परिच्छेद रहित है 6. ज्ञान सर्वथा अवाध्य है 7. ज्ञान का स्वरुप अनिववर्चनीय है 8.ज्ञान मे यथार्थ –अयथार्थ और परोक्ष –अपरोक्ष के भेद का न होना 9. स्वतंत्रता एवं विश्वबन्धुत्व का प्रेरक 10. चहुंमुखी विकास का आदि स्रोत

**1. ज्ञान स्वयं प्रकाश है–** यह कर्त्ता करण किया एवं फल के अधीन नहीं है । कर्त्ता करोड प्रयत्न करके भी स्थान ज्ञान को पुरुष ज्ञान नहीं बना सकता। मान्यता कर्त्ता के अधीन होती है। वह अपनी मानी हुई वस्तु को गणेश माने सूर्य माने बाद में फेर फार भी कर दे या बिल्कुल ही छोड दे वह इन बातो मे स्वतंत्र होता है। परन्तु ज्ञान नही है यह तो कर्त्ता का कृति है जिसको वह स्वये गढता है और बाद में स्वतंत्र मान लेता है ये मान्यताएं प्रत्येक कर्त्ता की जाति और देश की अलग अलग हो सकती हैं और होती हैं परन्तु ज्ञान सबका एक होता है। स्थाणु को भिन्न भिन्न मनुष्य चोर सिपाही या भूत के रुप में मान सकते है परन्तु ज्ञान सबका एक होगा कि यह स्थाणु है। इसलिए ज्ञान स्वयं प्रकाश है माण्डूक्योपनिषद् मे ज्ञान को स्वयं प्रकाश बताया गया है – अजमानिद्रमस्वप्नं प्रभातं भवति स्वयं [29]

**2 ज्ञान स्वतः प्रमाण है परतः** *नही–* इसका तात्पर्य है कि किसी भी पदार्थ का यथार्थ निश्चय करने में ज्ञान ही अन्तिम निर्णायक होगा । सम्पूर्ण व्यवहार अपने ज्ञान के आधार पर ही चलता है । किसी भी विषयद के होने एवं न होने का निर्णय करने मे ज्ञान ही अन्तिम कारण होगा । उदाहरणार्थ – विषय की सत्ता इन्द्रियों से, , इन्द्रियों की मन से, मन की बुद्धि से और बुद्धि की ज्ञान स्वरुप आत्मा से निश्चित होती है –

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रिभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धे : परतस्तु सः ।।[30]

प्रमाता प्रमाण एवं प्रमेय की त्रिपुटी (सिद्धि) केवल ज्ञान द्वारा ही प्रकाशित होती है । इसीलिए ज्ञान की सिद्धि के लिए उनकी कोई अपेक्षा नही है । सिद्धि के भाव और अभाव का प्रकाशक ज्ञान ही है । वे रहें तब भी ज्ञान है और न रहें तब भी ज्ञान है । ज्ञान के बिना उन्हें अनुभव ही कौन करेगा । त्रिपुटी में ज्ञान ही अन्वय है और ज्ञान त्रिपुटी से व्यतिरिक्त है । इसलिए ज्ञान की सत्ता अखण्ड है । प्रमाणों के द्वारा ज्ञान की सिद्धि नहीं होती । ज्ञान से ही समस्त प्रमाण प्रमेय आदि व्यवहार सिद्ध होते है । तात्पर्य यह है कि ज्ञान का प्रामाण्य स्वतः है परतः नहीं ।

**3.ज्ञानकाल परिछिन्न नहीं है–** जब हम सोचने लगते है कि ज्ञान ही भूत है और ज्ञान भविष्य है तब हम मानो यह स्वीकार कर लेते है कि काल की धारा मे ज्ञान का उदय एवं विलय हुआ करता है । प्रश्न यह है कि काल सावयव है या निरवयव ? यदि निरवयव है तो उसमें भूत भविष्य एवं कला काष्ठा आदि के भेद ही सम्भव नही है वह ब्रह्म ही है । यदि सावयव है तो ज्ञान उसके भिन्न अवयवों का प्रकाशक मात्र होगा और प्रकाश्यगत भेद प्रकाश पर आरोपित नही किया जा सकेगा यथा घट पटादि के भिन्न भिन्न होने पर उनके प्रकाशित कराने वाले प्रकाश में भेद कल्पना का कोई प्रसंग नही है । सत्य बात तो यह है कि काल भेद की कल्पना ही निर्मूल है कल्पना करें कि क्या कभी काल अभाव था या काल अभाव होगा जिस काल में हम काल के अभाव की कल्पना करेंगें वह भी काल ही होगा और काल के अभाव मे की कल्पना को निवृत कर देगा । अभाव रहित वस्तु निरंश होती है । गुणन केवल सांश वस्तु मे ंहो सकता है निरंश में नही इसलिए अभावरहित काल मे ंकला काष्ठादि रुप अवयव के आधार पर भूत भविष्य की कल्पना करना निःसार है । तब ये जो भूत भविष्य मालूम पडते है वे हैं क्या ?सविन्मात्र हैं ।कोई भी सविन्मात्र वस्तु संवित को परिच्छिन्द नही बना सकती इसलिए ज्ञान का काल परिछिन्न नही है ।

**4. ज्ञान में देश परिच्छेद नहीं है–** ज्ञान देश सीमा रहित है कि अमुक देश में अर्जित अथवा प्राप्त होगा । पूर्व पश्चिम उत्तर आदि के रुप में प्रतीयमान देश निष्ठ है अथवा पृथ्वी सूर्य ध्रुव आदि ग्रह नक्षत्रनिष्ठ है स्पष्ट है कि इस भेद कल्पना का कारण ग्रहनक्षत्र है देश नही तब क्या अन्यगत भेद का अन्य पर आरोपित करना न्यायोचित है ? कदापि नहीं । काल के समान ही कही भी देश का अभाव नही है । जिस देश मे देश के अभाव की कल्पना की जाएगी वह भी तो देश ही होगा । अभावरहित देश ब्रह्म है पूर्व पश्चिम आदि दैर्ध्य – विस्तार आदि की कल्पना वस्तुनिष्ठ नही सविन्मात्र है ठीक वैसे ही जैसे स्वप्न देश की लम्बाई चौडाई । स्वयं प्रकाश ज्ञान के द्वारा प्रकाशित देश भेद ज्ञान का भेदक नही हो सकता । इसलिए ज्ञान देश परिच्छेद रहित है ।

**5. ज्ञान विषय परिच्छेद रहित है –** ज्ञान विषय परिच्छेद की सीमा से रहित है क्योंकि इसमें ऐसा भी नही है कि ज्ञान का कोई एक निश्चित प्रमुख विषय ही हो । ज्ञान का विषय सृष्टि का कोई भी तथ्य हो सकता है ।

**6. ज्ञान सर्वथा अवाध्य है –** ज्ञान का कोई भी प्रतियोगी या विरोधी नही है स्वयं अज्ञान भी ज्ञान के द्वारा प्रकाशित होता है । 'मै अज्ञ हूं ' यह भाव भी एक प्रकार का ज्ञान ही है । ज्ञान में प्रकार भेद भी विचार न करने से जान पडता है तात्पर्य है कि सन्धिहीन होने कारण ज्ञान और अज्ञान का भेद कल्पित है । इसलिए अज्ञान ज्ञान का बाध नही कर सकता । ज्ञान के बोध की कल्पना करने पर प्रश्न उठता है कि ज्ञान का बाध ज्ञात होगा या अज्ञात वह ससाक्षिक होगा या निःसाक्षिक । अज्ञात और असाक्षिक होने पर ज्ञान का बाधा होने से कोई प्रमाण नही है । ज्ञात और ससाक्षित

होने पर ज्ञान की सत्ता ज्ञानस्वरूप सत् अक्षुण्य एवं अखण्ड सिद्ध हो जाती है ।

**7. ज्ञान का स्वरूप अनिवर्चनीय है –** जब हम किसी पदार्थ का निर्वचन करने लगते है तब उसमे दृश्यता अन्यता आदि का आरोप अवश्य करते है । अनिर्वचनीयता का आशय केवल इतना ही है यह ज्ञान स्वरुप से भिन्न नही है । अबाध्यता स्वयंप्रकाशता अपरिच्छिन्नता आदि जो लक्षण हैं वे अन्य पदार्थों में चाहे उसका नाम कुछ भी क्यों न रखें पूरे नही उतर सकते । एक पर रुप अपरिचिन्न स्वप्रकाश एव अवाध्य हो तथा दूसरा स्वरुप भी हो मैं भी होंउ यह बात अनुभूति का विश्लेषण करने पर सिद्ध नही होती । अज्ञेय और अनिर्वचनीय शब्द पर्यावाची नही है । विदित और अविदित से अन्य नही हो सकता । इसलिए अनिर्वचनीय पद समस्त निर्वचनो का निषेध करके अनिरुक्त स्वात्मा में ही विश्रान्ति लाभ करता है ।

**8. ज्ञान मे यथार्थ–अयथार्थ और परोक्ष –** अपरोक्ष के भेद का न होना है । व्यवहार में जो ज्ञान को यथार्थता आदि भेद किए जाए यदि वास्तव में विचार करके देखें तो कल्पित विषयगत भेद ही ज्ञान पर आरोपित होते है । स्वप्न का हाथी झूठा है परन्तु स्वप्न मे हाथी का देखना झूठा नही है । हाथी नही हमारी जागृतकालीन स्मृति का यही स्वरुप है । हाथी देखा नही था यह नही हाथी का असत्ता ज्ञान की असत्ता की प्रयोजनक नही हो सकती । अविचार दशा हाथी का अयथार्थता का आरोप ज्ञान पर कर दिया जाता है । इसी प्रकार ज्ञान की परोक्षता भी विचारणीय है । परोक्ष–अपरोक्ष का भेद घटादि पदार्थों में होता है या उनके ज्ञान ? क्या ज्ञान भी अपनो से दूर होता है । यदि ऐसा मान ले पृथ्वी पर घट है और अन्तः करण में ज्ञान तब तो अपने अन्तःकरण में ही रहा । उसकी परोक्षता कहां हुई । घटगत परोक्षता का ही आरोप ज्ञान पर हुआ । आश्रयत्व विषयत्व आदि विभाग से रहित अद्वितीय चित्तस्वरुप ज्ञान मे अयथार्थता और परोक्षता की कथा का कोई प्रसंग नही है ।

**9. स्वतंत्रता एवं विश्वबन्धुत्व की भावना का प्रदाता–** हमारे ऋषिमुनियों ने प्राचीन काल से ही स्वतंत्रता एवं विश्वबन्धुत्व की भावना हेतु ज्ञान का तत्व चिन्तन के माध्यम से अर्जन किया स्वतंत्रता संग्राम के आन्दोलनकारी इसका जीता जागता उदाहरण हैं यथा–महात्मा गान्धी बाल गंगाधर तिलक डॉ. भीमराव अम्बेडकर आदि । विश्वबन्धुत्व की भावना के सन्दर्भ में संस्कृत साहित्य में श्लोक प्राप्त होता है –

अयं निजः परोवेति च गणना लघुचेत्साम्
उदारचरितानां तु वसुधैव कटुम्बकम्

अतः ज्ञान जिस किसी व्यक्ति को प्राप्त हो जाता है उसके अन्दर स्वतंत्रता एवं विश्वबन्धुत्व की चिंगारी दौडने लगती है अर्थात् ज्ञान प्राप्त व्यक्ति कहीं भी परतंत्र नहीं रह सकता और वह सभी को समान दृष्टि से देखता है।

**10. चहुंमुखी विकास का आदि स्रोत–** ज्ञान प्राचीन काल से ही चहुंमुखी विकास का आदि स्रोत रहा है क्योंकि ज्ञान के द्वारा ही तो आज इस वैज्ञानिक युग में मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नित्य नये अविष्कार हो रहे हैं । अतः ज्ञान ही चहुंमुखी विकास का आदि स्रोत है।

शंकराचार्य जी के अनुसार ज्ञान तो ज्ञान ही होता है वह इद्रियगोचर नही है क्योंकि आत्मा का कोई आकार नही होता । अतः आत्मज्ञान का कोई विषय नही है इसमे श्रुति प्रमाण है –वह सूर्य की भांति स्वयं प्रकाशस्वरुप है । इस आत्मा का स्वरुप दृष्टि के सामने नही ठहरता कोई भी उसे आंखो से देख नही सकता जो पुरुष निर्मल मन से ऐसा तत्व से जान लेते है वे अमृतरुप हो जाते है ।[32] श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञान मोक्ष का साधन है ।[33] वैदिक संहिताओं में ज्ञान शब्द का दार्शनिक प्रयोग दृष्टिगोचर होता है उन्होने भी ज्ञान को मुक्ति का साधन माना है।[34] वामदेव जी को गर्भावस्था में आत्म ज्ञान हो गया था उस समय उन्होने शयन करते समय कहा था –

गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनमनि विश्वा ।
शतं मा पुर आयसीरपक्षन्नधः श्येनो जवसा निरदीयमीति ।[35]

अर्थात् मैंने गर्भ में रहते हुए ही इन देवताओं के सम्पूर्ण जन्मों को जान लिया है। तत्वज्ञान होने से पूर्व मुझे सैकडो लोहमय शरीरों का अवरुद्ध कर रखा था। अब तत्व ज्ञानोदय से मैंने श्येन पक्षी के समान उनका छेदन करके बाहर निकल आया हूं। ज्ञान से जीवात्मा को सृष्टि (संसार) के समस्त प्रकार के बन्धनो (यथा–जन्म जरा मरण व्याध आदि) से मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञान के प्रमुख साधनों के विषय में कहा गया है –

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौच स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ।[36]

अर्थात् श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव दम्भाचरण का अभाव किसी भी प्राणी को किसी प्रकार भी न सताना क्षमाभाव मनवाणी आदि की सरलता श्रद्धाभक्ति सहित गुरु की सेवा बाहर भीतर की शुद्धि अन्तःकरण की स्थिरता और मन –इन्द्रिय सहित शरीर का निग्रह आदि ज्ञान प्राप्ति के प्रमुख साधन हैं । इन साधनों में से किसी भी एक को अपनाकर पुरुष ज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं और इससे पापरहित होकर अपुनरावृत्ति अर्थात् परमगति (मुक्ति) को प्राप्त होते हैं – गच्छन्त्यपुनरावृतिम ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः[37]

**निष्कर्षतः** श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञान का स्वरुप के विषय में बताया गया है कि सृष्टि (समस्त ब्रह्माण्ड) के शाश्वत सत्य ब्रह्म (आत्मा) और उसकी माया (प्रकृति) को जानना ही ज्ञान है यह सांसारिक और आध्यात्मिक रुप से दो प्रकार का होता है । इसे प्राप्त करके जीवात्मा समस्त प्रकार के बन्धनों (यथा–जन्म, जरा ,मरण आदि) से मुक्ति प्राप्त कर लेता है और उसका पुनर्जन्म नहीं होता ।

## सन्दर्भ सूची


1. श्रीमद्भगवद्गीता, 13/2
2. सत्यार्थ प्रकाशः सप्तम् सम्मुल्लास पृ.सं., 156
3. विवेक चूडामणि, 1/21
4. विवेक चूडामणि, 1/20
5. माण्डूक्योपनिषद् (गीता प्रेस गोरखपुर) पृ.सं. 263
6. माण्डूक्योपनिषद् (अलातशान्ति प्रकरण) प्र.सं. 87–88
7. सर्ववेदान्त सिद्धान्त सार संग्रह (रणधीर प्रकाशन हरिद्वार)पृ.सं. 14
8. ईशावास्योपदिषद्, 11
9. सांख्यदर्शन, 3/33
10. तर्कसंग्रह (आत्मनिरुपण)
11. मुण्डकोपनिषद्, 2/2/10
12. श्रीमद्भगवद्गीता, 4/38
13. श्रीमद्भगवद्गीता, 4/37
14. श्रीमद्भगवद्गीता, 4/39
15. श्रीमद्भगवद्गीता, 3/38
16. श्रीमद्भगवद्गीता, 3/40–41
17. योगवासिष्ठ, 3/118/5–6
18. योगवासिष्ठ, 3/118/7–15
19. आचार्यशंकर चर्पट मंजरी पृ.सं. 18
20. श्रीमद्भगवद्गीता, 4/33
21. शिवमहापुराण (विद्येश्वर संहिता 9/36–39
22. श्रीमद्भगवद्गीता, 4/1–2

23. मुण्डकोपनिषद्, 1/1/2–5
24. कठोपनिषद्, 1/2/2
25. कठोपनिषद्, 1/2/1
26. कठोपनिषद्, 1/2/5
27. माण्डूक्योपनिषद् ( अद्वैत प्रकरण ) 33
28. माण्डूक्योपनिषद् ( अलातशान्ति प्रकरण )81
29. श्रीमद्भगवद्गीता, 5/16
30. श्रीमद्भगवद्गीता, 4/42
31. उपनिषदांक (संवत् 2068) पृ.सं. 24
32. श्वेताश्वत्तरोपनिषद्, 3/8
33. श्रीमद्भगवद्गीता, 4/9–39 5/29 8/29
34. ऋग्वेद 4/2/7
35. ऐतरेयोपनिषद 2/1/5
36. श्रीमद्भगवद्गीता, 13/7
37. श्रीमद्भगवद्गीता, 5/17